बिज़नेस स्टैंडर्ड

गैस सब्सिडी

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एक महत्त्वाकांक्षी योजना शुरू की है जिसके तहत 5 करोड़ गरीब परिवारों को घरेलू गैस कनेक्शन दिए जाने हैं। ये कनेक्शन घर की महिला सदस्यों के नाम पर जारी किए जाएंगे जो गरीबी रेखा से नीचे वाले परिवार की सदस्य हैं। प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना नामक यह योजना तीन साल तक चलेगी और पहले साल इसमें 1.5 करोड़ लोगों को कनेक्शन दिए जाएंगे। इसके लिए 2,000 करोड़ रुपये का प्रावधान पहले ही किया जा चुका है।

पूरी योजना का भार केंद्र सरकार वहन करेगी जो तकरीबन 8,000 करोड़ रुपये होगा। उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में इस योजना की शुरुआत करते हुए प्रधानमंत्री मोदी ने पूर्व प्रधानमंत्रियों की आलोचना करते हुए कहा कि वे केवल वोटों पर ध्यान देते रहे और गरीबों को ध्यान में रखकर कोई नीति नहीं बना सके। इसमें दो राय नहीं कि मोदी की योजना गरीबों को बहुत लाभ पहुंचाएगी। खराब ईंधन के प्रयोग के कारण घर के भीतर होने वाले वायु प्रदूषण से देश में हर साल 13 लाख मौतें होती हैं। एलपीजी का इस्तेमाल प्रदूषण का स्तर कम करेगा और लोगों का जीवन बेहतर बनेगा। लेकिन इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि यह योजना भाजपा की चुनावी संभावनाओं को ताकत प्रदान करेगी। समस्या यह है कि राजनीतिक लाभ राजकोष को नुकसान पहुंचाकर ही हासिल किए जाते हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि योजना में एलपीजी मूल्य सुधार और सब्सिडी को लक्षित करने के क्षेत्र में भी अनदेखी की गई है। योजना की पहली बड़ी चुनौती तो यही होगी कि गरीबों की पहचान की जा सके ताकि उनको सब्सिडी दी जा सके।

गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली आबादी के मामले में समुचित और प्रमाणित आंकड़ों के अभाव में यह काम आसान नहीं। सरकार सामाजिक-आर्थिक जातीय गणना के आंकड़ों पर निर्भर है लेकिन वे पर्याप्त नहीं। हो सकता है योजना का दुरुपयोग हो जाए। वितरण चैनलों

को मजबूत बनाने और गरीबों को छोटे आकार के गैस सिलिंडर मुहैया कराने के मामले में भी चुनौतियां कम नहीं हैं। दूसरी बात, योजना में आधार से जुड़े प्रत्यक्ष नकदी हस्तांतरण का प्रयोग किए जाने की संभावना नहीं है। इस योजना में नकदी सीधे लाभार्थी के बैंक खाते में जाती है। ऐसे में सरकार के लिए तेल कंपनियों को सब्सिडी आधारित गैस आपूर्ति से होने वाले उनके घाटे की सीधी भरपाई करनी होगी। इसमें तमाम संबंधित समस्याएं सामने आएंगी, मसलन लीकेज, भुगतान में देरी, तेल विपणन कंपनियों को वित्तीय क्षति आदि। आधार से जुड़ी योजना का लाभ यह है कि वह तेल कंपनियों को होने वाले पुनर्भुगतान में देरी की समस्या को पूरी तरह समाप्त कर देती है।

एलपीजी के मूल्य निर्धारण और सब्सिडी सुधार के भविष्य से जुड़ी समस्याएं आगे सर उठा सकती हैं। सरकार को अभी भी आर्थिक रूप से संपन्न तबके की घरेलू गैस सब्सिडी समाप्त करने का कदम उठाना है। हालांकि सरकार ने एक निश्चित आय वर्ग से नीचे रहने वालों तक सब्सिडी को सीमित करके अपने इरादे जता दिए हैं। इसके बजाय सरकार घरेलू गैस उपभोक्ताओं के अपनी सब्सिडी को स्वेच्छा से त्यागने पर भरोसा कर रही है। कहा जा रहा है कि अब तक एक करोड़ परिवार अपनी सब्सिडी छोड़ चुके हैं। स्वैच्छिक घोषणा से सब्सिडी छोडऩे से होने वाली बचत मददगार हो सकती है लेकिन यह दीर्घावधि का स्थायी उपाय नहीं है।

अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमतें अभी कम हैं। सरकार को बिना समय गंवाए आय और परिसंपत्ति के आधार पर सब्सिडी का मानक तय करना चाहिए। ऐसा करने से एक खास आय से ऊपर के लोगों को मिलने वाली सब्सिडी समाप्त हो जाएगी। नई योजना के समक्ष कई चुनौतियां हैं जिनसे निजात पानी होगी।

दैनिक भास्कर

शासन में भागीदारी से ही आ रही है सच्ची समानता

दलितों में चेतना पैदा कर समाज में बदलाव लाने की कई धाराएं रही हैं, लेकिन यदि दिशा सही न हो तो कई कोस चलकर भी मंजिल प्राप्ति की गारंटी नहीं होती। मध्यकालीन भारत में तमाम सूफी-संतों व भक्त कवियों ने बिगुल बजाया कि सभी प्रभु के बंदे है तो भेदभाव क्यों? इस धारा के तुकाराम, कबीरदास, रहीम, रामानंद, गुरु घासीदास, रविदास आदि महापुरुषों ने प्यार-मोहब्बत का संदेश देने की कोशिश की। इससे दबे-कुचले वर्ग में विश्वास पैदा हुआ। जो गैर-दलित थे, चेतना उनमें पैदा करनी थी कि जात-पात एवं छुआछूत मानव निर्मित है।

जो दलित गांव के किनारे बसते थे, उन्हें छुआ तक नहीं जाता था। साथ में बैठकर खाना-पीना तो दूर की बात थी। इनके आंदोलनों से परिवर्तन आया और लोग कम से कम प्रवचन के समय साथ बैठने लगे। कबीर दास के विचार औरों की तुलना में क्रांतिकारी तो थे, लेकिन उन्होंने कोई सांगठनिक व्यवस्था नहीं बनाई कि प्रचारक विचारों को जमीन तक पहुंचाते। गुरुनानक देव ने व्यावहारिक कार्य किया। उन्होंने अपने मत को संस्था एवं सेवक के रूप में परिवर्तित किया और सिख धर्म का जन्म हुआ। किंतु दलितों को शासन में भागेदारी नहीं मिल पाई।

मानवतावादी धारा में स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, लाल डे जैसे महापुरुष आते हैं। इन्होंने छुआछूत समाप्त करने का संदेश दिया। दयानंद सरस्वती ने सभी को आर्य कहा और उससे प्रभावित होकर ज्यादातर दलितों ने नाम के आगे आर्य लिखना शुरू किया। गांधीजी ने छुआछूत को पाप का दर्जा दिया, लेकिन जाति व्यवस्था बनाए रखने के पक्ष में थे। विवेकानंद ने सवर्ण समाज को

ललकारा कि दलितों के साथ भेदभाव बंद करो वरना जिस दिन जग गए तो उसे फूंक से उड़ा देंगे। उन्होंने शिक्षा की व्यवस्था नहीं की और न शासन में भागेदारी हेतु कोई कदम उठाया।

फिर अमेरिका व यूरोप के कल्याणकारी आंदोलन से प्रभावित होकर समाजवाद ने जगह बनाई। 1917 में रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति का प्रभाव भारत पर पड़ा, जिससे 1920 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ। इनके क्रांतिकारी विचार आर्थिक जगत तक सीमित थे, जबकि दलितों का दर्द मुख्यत: सामाजिक और धार्मिक रहा है। यमन राय, पंडित राहुल सांकृत्यायन, श्रीपाद डांगे, गंगोदरी पाद, पीसी जोशी, झारखंडे राय, एके गोपालन, राम मनोहर लोहिया, मोहन धारिया आदि इस धारा के प्रमुख विचारक व नेता थे। इन्होंने दलितों को शासन और आर्थिक क्षेत्र में भागेदारी देने की बात कही।

कम्युनिस्टों ने तो जाति को मानने से इंकार कर दिया और कहा कि आर्थिक समानता से भेदभाव खत्म होंगे। सामाजिक और धार्मिक आधार पर हो रहे शोषण पर इनकी भी नज़र नहीं गई। चौथी धारा उन्हीं से शुरू हुई, जिन्होंने स्वयं जातिगत शोषण देखा और अनुभव किया। इन महापुरुषों में महात्मा फुले, नारायण गुरु, शाहू महाराज, पेरियार और डॉ. भीमराव आंबेडकर शामिल हैं। डॉ. आंबेडकर ने समाज का विश्लेषण करते हुए चेतना पैदा की। आर्थिक कारणों से ज्यादा सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था को दलितों के शोषण के लिए जिम्मेदार ठहराया। अंतिम ध्येय जाति नष्ट करना था। फोड़े के दर्द को कम करने के लिए ऊपर से मरहम पट्टी भी लगाई जाती है और चीर-फाड़ करके मवाद भी निकाला जाता है। शुरुआती तीन धाराएं बिना चीर-फाड़ घाव का इलाज करना चाहती थी, जो संभव नहीं है।

समाजशास्त्र एवं मानव विज्ञान में पढ़ाया जाता है कि जो बड़ी परंपरा होती है वह छोटी को प्रभावित करती है। इनके तमाम सारे प्रयास व्यर्थ इसलिए गए, क्योंकि जाति व्यवस्था बनाने कि जो बड़ी परंपरा है वह जब भी छोटी परंपरा की शुरुआत होती थी तो उसे कुछ समय के बाद अपने में समाहित करती गई। डॉ. आंबेडकर द्वारा किए गए प्रयास इसलिए ज्यादा असरदार हुए, क्योंकि उन्होंने शासन-प्रशासन में भागेदारी ही नहीं बल्कि शोषण करने वाले परंपराओं का विकल्प भी दिया। इसी से नया, सच्चा और सार्थक सामाजिक बदलाव आया। सच्ची समानता आ रही है।

THE ECONOMIC TIMES

Welcome move: Bankruptcy code will help in swift redeployment of distressed assets.

The adoption by Parliament of the bankruptcy code is a landmark development, for its intrinsic utility, the bipartisan cooperation it embodies and the sterling work put in by members of the Joint Parliamentary Committee.

Given the high level of bad debt on the books of India's largest banks, which reflect companies in distress that cry out for reorganisation or dissolution, India badly needs a legal framework for swift resolution of corporate distress.

The code provides that. However, it will take time for the law to become operational: rules have to be framed and a cadre of resolution professionals has to be brought into being, complete with a regulatory framework. The government should work double quick on both tasks.

The joint committee of members of Parliament has made some sensible amendments. A substantive one relates to cross-border assets of insolvent firms. As a result of the committee's exertions, the new bankruptcy code will have an enabling provision that allows the government of India to pursue assets located in foreign jurisdictions. However, cross-border insolvency remains a contentious area.

India must pursue, with vigour, multilateral efforts to realise a universal approach to liquidation of a multinational or transnational company, so that creditors around the world have proportionate access to the proceeds of holistic resolution carried out in one jurisdiction. Such an ability to see a multinational enterprise with diverse subsidiaries across the world as one entity, for tax and resolution purposes, must figure high on the agenda of the G20, for example.

With the new law, the government hopes to reduce the time taken for resolution to less than two years. This paves the way for removing an egregious violation of the principle of limited liability in India's loan covenants. Banks insist on personal guarantees of loans by directors.

This inhibits entrepreneurship but has been tolerated as the only check on promoters' tendency to abuse legal delays. If the code abolishes delay in resolution, banks should dispense with personal guarantees as well.

We need national water law to deal with crisis situation

Two successive deficient monsoons seem to have much aggravated water stress nationally. Reports suggest severe water scarcity across regions. To tide over a crisis situation, plan for the medium term and well beyond, we need proactive policy with a particular focus on governance of water resources, and work out the ways and means to step-up water services across the board. In tandem, we need a central law to bring coherence and force to what remains a largely uncoordinated and ad-hoc water policy. Huge benefits would flow from focused national policy attention.

As a recent working paper put out by Niti Aayog reiterates, India accounts for about 17% of the world's population but a mere 4% of world freshwater resources. Worse, the distribution of our water resources is hugely uneven. As the mavens note, there is wide temporal and spatial variation in availability.

The paper adds that the global norm is that a country is classified as water-stressed if per-capita water availability falls below 1,700 m3, and water-scarce if the figure dips below 1,000 m3. And with 1,544 m3 per-capita availability, India is already waterstressed and moving towards scarcity.

The figures suggest that farming consumes 84% of the total water available, industry 12% and domestic usage for the rest 4%. Also, the Niti paper notes that we in India use 2-4 times more water to produce one unit of major crops, compared to the other main farming nations like China and the US. We need to raise water use efficiency.

The way ahead is to shore up water efficiency by diffusing various water husbanding solutions in the field that can be participatory and rewarding at the community level. And, in parallel, there's the need to innovate and germinate seeds that are less water-intensive.

Next, we need to optimise and rationalise the sunk costs (read: investments) in our irrigation projects. The fact is that grossly inadequate maintenance of the existing irrigation infrastructure pan-India has resulted in a huge wastage and scandalous underutilisation of available resources.

True, close to 55% of the current area under cultivation is not covered by irrigation. But note that India's irrigation potential from myriad major, medium and minor projects was already about 113 million hectares by the end of the 11th Plan period. The figure amounts to 81% of India's ultimate irrigation potential estimated at 140 million hectares.

So, the scope for expanding the irrigation potential on a large scale going forward is rather limited. It follows that the marginal utility of improving utilisation of irrigation potential would be massive indeed. Hence the pressing need to boost irrigation command area development programmes, and to revamp attendant institutional and governance structures. Besides, given our highly seasonal rainfall, with 50% precipitation falling in about 15 days, we need low-cost local measures for water storage and groundwater recharge.

There is excessive and unsustainable reliance on 'mined' groundwater. It has meant fast-dropping water tables and depleting aquifers. Perverse incentives and reckless populism like gratis power have meant that groundwater is the main supply source in over 60% of the irrigated area. Also, 80% of domestic water supply now comes from groundwater, more as a coping mechanism given the widespread mismanagement and illmaintenance of piped water supply.

India's rising urban population would, in effect, compound the problem. Groundwater, from a policy perspective, is still essentially perceived as individual property, never mind that it is linked to the hydrological cycle and very much a community resource. We need policy measures to rationalise cropping patterns as per agroclimatic conditions and water availability.

The bottom line is that growing water-intensive crops like paddy in the northwest, notwithstanding falling water tables in the region, or waterguzzling crops like sugarcane in the relatively drier regions of the peninsula are wholly unsustainable.

It cannot be gainsaid that low public awareness about the scarcity and economic value of water gives rise to wastage and its inefficient usage. A holistic, interdisciplinary approach on water is missing.

It is plain that there's an overarching need for a national water law. Constitutionally, water is primarily a state subject. Several states have duly enacted laws on water and related issues. Yet, none of the concerned states, for instance, has laws or executive notifications specifying the basis for water allocation among different segments in river basins under their jurisdiction.

Hence the need for national consensus on managing water, complete with related rules, tenets and principles that can transparently apply across states and regions.

राष्ट्रीय सहारा

यह समय की मांग है

श्रम सुधार

हाल ही में तीन मई को अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) ने अपनी नवीनतम रिपोर्ट में कहा कि भारत के तेज आर्थिक विकास के लिए श्रम सुधार और जीएसटी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं। हालांकि बहुप्रतीक्षित श्रम सुधार देश की जरूरत है। लेकिन देश में मजदूर संगठनों के विरोध को देखते हुए केंद्र सरकार ने श्रम सुधारों की अपनी महत्त्वाकांक्षी योजना को फिलहाल ठंडे बस्ते में डाल दिया है। यद्यपि केंद्र में श्रम सुधार संबंधी कई चुनौतियां हैं, लेकिन कुछ राज्यों जैसे राजस्थान, मध्यप्रदेश और गुजरात ने श्रम कानूनों में कई व्यापक बदलाव किए हैं। राजस्थान इस मामले में सबसे आगे है। राजस्थान ने फैक्टरी कानून, औद्योगिक विवाद कानून, प्रशिक्षु कानून और अनुबंधित श्रम कानून के प्रावधानों में महत्त्वपूर्ण सुधार किए हैं। इसी तरह, मध्य प्रदेश ने कोई 20 श्रम कानूनों में संशोधन किए हैं। मौजूदा श्रम नियमों को सरल बनाने के लिए श्रम मंत्रालय 44 कानूनों को चार संहिताओं में करने की प्रक्रिया में है। ये संहिताएं औद्योगिक संबंध, मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा एवं सुरक्षा हैं। विश्व बैंक की नई अध्ययन रिपोर्ट के मुताबिक भारत के श्रम कानून दुनिया के सर्वाधिक प्रतिबंधनात्मक श्रम कानून हैं। देश के श्रम कानून लंबे समय से लाइसेंस राज की विरासत को ढोने वाले कानून बने हुए हैं। इकोनोमिस्ट इन्टेलीजेंस यूनिट (ईआईयू) की रिपोर्ट में रिपोर्ट में भारत को 46वां स्थान दिया गया है; जबकि चीन, दक्षिण कोरिया, मेक्सिको और थाईलैंड की रैंकिंग भारत से काफी ऊपर बताई गई है। उल्लेखनीय है कि श्रम और औद्योगिक कानूनों की संख्या के मामले में हमारा देश दुनिया में सबसे आगे है। केन्द्र सरकार के पास श्रम से संबंधित 50 और राज्य सरकारों के पास श्रम से संबंधित 150 कानून हैं। देश में कारोबार के रास्ते में कई कानून ऐसे भी लागू हैं जो ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश शासनकाल के दौरान 150-200 साल पहले बनाए गए थे। कई वर्षों से यह अनुभव किया जा रहा है कि श्रम कानून भी उत्पादकता वृद्धि में बाधक बने हुए हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में विधि आयोग ने 1998 में ऐसे कानूनों का अध्ययन किया था और ऐसे कानूनों की एक लंबी सूची तैयार की थी, जिन्हें समाप्त कर संबंधित कायरे को गतिशीलता दी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय भी कई बार अप्रासंगिक हो चुके ऐसे कानूनों की कमियां गिनाता रहा है, जो काम को कठिन और लम्बी अवधि का बनाते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे कानूनों से सरकार और देश की अर्थव्यवस्था को नुकसान भुगतना पड़ रहा है। कई शोध अध्ययनों में यह तय उभरकर सामने आया है कि भारत में उदारीकरण की धीमी और जटिल प्रक्रिया के पीछे श्रम सुधारों की मंद गति एक प्रमुख कारण है। अब भारत में निवेश बढ़ाने और मेक इन इंडिया अभियान के सफल होने की संभावनाएं

साकार करने के लिए श्रम सुधार जरूरी हो गए हैं। यह जरूरी है कि चीन की तरह श्रम कौशल प्रशिक्षण पर प्राथमिकता से ध्यान दिया जाए। चीन में श्रम कानूनों को अत्यधिक उदार और लचीला बनाकर कार्य संस्कृति विकसित की गई है। चीन में पुराने व बंद उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों को नई जरूरतों के अनुरूप काम करने के लिए प्रशिक्षण ने की नीति भी अपनाई गई है। वस्तुतः श्रम सुधार समय की मांग है । ऐसे सुधारों से आर्थिक विकास और रोजगार के नए रास्ते खोले जा सकते हैं। अब श्रम कानूनों में लचीलापन लाने और इंस्पेक्टर राज को समाप्त करने के लिए श्रम नियमों को सरलतापूर्वक लागू करना होगा। श्रम कानूनों की भरमार कम करनी होगी और ऐसी नीतियां और कार्यक्रम बनाने होंगे, जिनसे उत्पान बढ़े और उपयुक्त सुरक्षा ढांचे के साथ श्रमिकों का भी भला हो। श्रम कानूनों में बदलाव का मतलब श्रमिकों का संरक्षण समाप्त करना नहीं है वरन इससे उद्योग-कारोबार के बढ़ने की संभावना बढ़ेगी और उद्योगों में नए श्रम अवसर निर्मित होंगे। उद्योग जगत को भी यह समझना होगा कि वह श्रमिकों को खुश रखकर ही उद्योगों को तेजी से आगे बढ़ा सकेगा। इस समय जब मोदी सरकार अपने कार्यकाल के दो साल पूरे करने जा रही है तब सरकार को अधिकतम प्रयास करना होगा कि श्रम संगठन और उद्योग संगठन श्रम और पूंजी के हितों में समन्वय बनाने के लिए खुले मन से संवाद करें। ऐसा होने पर ही सरकार श्रम एवं पूंजी के बीच संतुलन बनाने की कठिन चुनौती का समाधान निकाल सकेगी। इससे श्रमिकों और उद्योगपतियों की प्रसन्नता के साथ देश के विकास की डगर आगे बढ़ सकेगी।